गायत्री विद्या सेट

गायत्री मंत्र के **स्य** अक्षर की व्याख्या

परमार्थ और स्वार्थ का समन्वय

— श्रीराम शर्मा आचार्य

परमार्थ और स्वार्थ का समन्वय

गायत्री मंत्र का तेरहवाँ अक्षर 'स्य' हमको स्वार्थ और परमार्थ के वास्तविक स्वरूप की शिक्षा देता है ।

स्यंदनं परमार्थस्य परार्थो बुधैमर्तः ।
योऽन्यान सुखयते विद्वान् तस्य दुखं विनश्यति ।।

अर्थात्–"लोक हित में ही अपना परम स्वार्थ निहित है । जो दूसरों के सुखों का आयोजन करता है, उसके दुःख स्वयं ही नष्ट हो जाते हैं ।

संसार में हम अधिकांश मनुष्यों को तीन प्राकर से व्यवहार करते देखते हैं । (१) अनर्थ–दूसरों को हानि पहुँचा कर भी अपना मतलब सिद्ध करना, (२) स्वार्थ–व्यापारिक दृष्टि से दोनों ओर के स्वार्थ का सम्मिलन, (३) परमार्थ–अपनी कुछ हानि सहकर भी दूसरे लोगों का, साधारण जनता का हित साधन करना । इनमें से परमार्थ को यद्यपि लोग स्वार्थ से भिन्न समझा करते हैं, पर गूढ़ दृष्टि से विचार करने पर परमार्थ में ही अपना परम स्वार्थ समाया जान पड़ता है ।

जो व्यक्ति अनर्थ मूलक स्वार्थ में प्रवृत्त हैं अर्थात् दूसरों का अनिष्ट करके लाभ करते हैं, वे असुर कहलाते हैं । जो लोग दूसरों को बिना हानि पहुँचाये केवल अपने स्वार्थ पर दृष्टि रखते हैं वे पशुत्व की प्रवृत्ति वाले समझे जा सकते हैं और जो मनुष्य दूसरों के हित का ध्यान रखते हैं और आवश्यकता पड़ने पर इसके लिए न्यूनाधिक अंशों में अपने स्वार्थ का त्याग भी कर देते हैं, वे ही मनुष्य कहलाने के अधिकारी हैं । ऐसे व्यक्तियों को हम देवता भी कह सकते हैं ।

देव उसको कहते हैं, जो दूसरों को अपने सहयोग और सेवा से सुखी बनावे । देव स्वभाव का अवलम्बन करने वाला व्यक्ति अपने जीवन में स्वर्गीय सुख–शान्ति का प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है । दूसरों को अभाव ग्रस्त, दुखी, निर्बल, आपत्तियों में ग्रस्त देखकर जिनकी अन्तरात्मा व्यथित हो उठती है, जो दूसरों को सुखी और समुन्नत देखकर प्रसन्न होते हैं, ऐसे देव स्वभाव के मनुष्यों को परमार्थी कहते हैं । वे अपनी शक्ति और योग्यता को अपने शौक, मौज में न लगाकर दूसरों की सहायता में व्यय

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

करते हैं । ऐसा करने के कारण यद्यपि वे भौतिक सम्पत्ति से न्यूनाधिक अंशों में वंचित रह सकते हैं, पर मानसिक क्षेत्र में सदैव असीम आनन्द प्राप्त करते रहते हैं ।

स्वार्थ के दो स्वरूप

साधारण रीति से 'स्वार्थ' शब्द का अर्थ अच्छा नहीं समझा जाता । 'स्वार्थी' कहना एक प्रकार की गाली या निन्दा की बात समझी जाती है, पर कुछ विचार करने से लोगों की यह धारणा गलत जान पड़ती है । स्वार्थ की प्रवृत्ति जीव मात्र में और मनुष्य में भी स्वाभाविक रूप से पाई जाती है और उसे किसी तरह भी बुरा नहीं कह सकते । इस प्रवृत्ति के बिना आत्मरक्षा ही संभव नहीं । अगर मनुष्य आरम्भ से ही स्वार्थ पर दृष्टि न रखे और अपने शरीर की रक्षा के लिए यथोचित प्रयत्न न करे, तो इस सृष्टि का स्थिर रह सकना ही असम्भव है । छोटे से छोटा बालक भी जब भूख लगने पर रोता है और दूध पीने की चेष्टा करता है, तो वह स्वार्थ की प्रवृत्ति का ही मूल रूप है । इसके पश्चात् उसे निरन्तर अपने हानि–लाभ का विचार करना पड़ता है । सच तो यह है 'स्वार्थ' की एक ऐसी बहुमूल्य कसौटी परमात्मा ने हमें दी है जिस पर कसकर हम जान लेते हैं कि कौन काम खरा है और कौन खोटा है ? किसे करना चाहिए और किसे न करना चाहिए ? स्वार्थ जीवन की सर्वोपरि आवश्यकता है और उसका सदैव उचित रूप में ध्यान रखना चाहिए ।

पाठकों को यहाँ सन्देह उत्पन्न हो सकता है, यदि स्वार्थ इतनी ही उत्तम वस्तु है तो उसे बुरा क्यों कहा जाता है, स्वार्थी से घृणा क्यों की जाती है, स्वार्थ परायणता को धिक्कारा क्यों जाता है ? हमें जानना चाहिए कि लोक और वेद में जिस स्वार्थ की निन्दा की गई है उसका नाम यथार्थ में 'अनर्थ' होना चाहिए । पूर्व आचार्यों ने विशुद्ध स्वार्थ को परमार्थ के नाम से पुकारा है । यह परमार्थ ही सच्चा स्वार्थ है । अनर्थ को स्वार्थ कहना भूल है, क्योंकि वास्तविक अर्थों में परमार्थ से ही स्वार्थ की पूर्ति होती है । अनर्थ को अपनाना तो आत्मघातक है, इसे किसी दृष्टि से स्वार्थ नहीं कहा जा सकता है ।

स्वार्थ के दो भेद किए जा सकते हैं । एक अनर्थ दूसरा परमार्थ । एक किसान खेत को बड़े परिश्रम से जोतता है, रुपया खर्च करके गेहूँ

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

लाता है और उस गेहूँ को मिट्टी में मिला देता है । इसके बाद महीनों उस खेत को सींचता रहता है और रखवाली करता है । करीब एक वर्ष तक उसे निरन्तर उस खेत में कुछ न कुछ लगाना पड़ता है, कभी हल खरीदना पड़ा, कभी फावड़ा, कभी बैल लिए, कभी चरस लिया, निराई निकाई आदि में परिश्रम लगा और चिन्ता करनी पड़ी, उसका ध्यान रखना पड़ा सो अलग । यह किसान परमार्थी है, वह जानता है कि इस समय जो त्याग कर रहा हूँ । उसका बदला कई गुना होकर मुझे मिलेगा । सचमुच उसकी मेहनत अकारथ नहीं जाती । खेत में एक दाने के बदले हजार दाने पैदा होते हैं, किसान प्रसन्न होता है और अपनी परमार्थ बुद्धि की प्रशंसा करता है । एक दूसरा किसान परमार्थ पसन्द नहीं करता, वह सोचता है कि कल किसने देखा है । आज का फल आज न मिले तो परिश्रम क्यों किया जाय ? वह अपने अनाज को खेत में डालने से झिझकता है, कल पर उसका विश्वास नहीं, आज के अनाज की आज ही रोटी बनाकर खा लेता है, खेत खाली पड़ा रहता है, फसल नहीं उगती, कटौती के समय जब परमार्थी किसान के कोठे अन्न से भर रहे हैं, यह बैठा–बैठा सिर धुनता है, वह अपने बीज को बोने से पहले ही खा चुका, अब उसे कुछ भी नहीं मिलने वाला है । आप समझे होंगे कि परमार्थ का मतलब कल की बात सोच कर आज का काम करना है और अनर्थ का मतलब कल की भलाई–बुराई का विचार छोड़कर आज के लिए आज का काम करना है ।

वर्तमान के लिए भविष्य को भुला देने की नीति अनर्थ मूलक है । एक चटोरा व्यक्ति वर्तमान समय के स्वाद में लिप्त होकर जरूरत से ज्यादा खा जाता है, कुछ समय बाद पेट में दर्द होता है, डाक्टर आता है, जितना लोभ किया था उससे अधिक खर्च हो जाता है । एक कामी पुरुष किसी तरुणी पर मुग्ध होकर अमर्यादित भोग करता है, कुछ ही समय उपरान्त, वीर्य रोगों से ग्रसित हो जाता है । इसके विपरीत एक व्यक्ति जिह्वा पर संयम रखता है, कल की बात सोचकर आज के चटोरेपन को हटा देता है, उसका मर्यादित भोजन स्वस्थ रहने और दीर्घ जीवन जीने के लिए सहायता करता है । इसी प्रकार एक ब्रह्मचारी गृहस्थ नियत मर्यादा में रति संयोग करता है, वह निरोग रहता है, बलवान सन्तान प्राप्त करता है और पुरुषत्व को सुरक्षित रखता है । पहले दो असंयमी व्यक्ति दुःखी होंगे,

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

क्योंकि वे आज के लोभ में कल की बात भुला देते हैं । इसके विपरीत पिछले दो व्यक्ति आनन्द करते हैं, क्योंकि वे कल के लिए आज का काम करते हैं ।

"हमें तो अपने मतलब" की नीति को अपनाने वाले लोगों को स्वार्थी कह कर घृणा की दृष्टि से देखा जाता है । वास्तव में वे स्वार्थी नहीं अनर्थी हैं, क्योंकि वे वास्तविक स्वार्थ को भूल गए हैं और सत्यानाशी अनर्थ को अपनाए हुए हैं । जो व्यक्ति पड़ौस में हैजा फैल जाने पर उसे रोकने का प्रयत्न नहीं करता, जो व्यक्ति समाज में दुष्टता उत्पन्न करने पर उसे रोकने के लिए नहीं उठता, जो व्यक्ति गाँव में लगी हुई आग को बुझाने की कोशिश नहीं करता वह केवल अनर्थ करता है, क्योंकि मुहल्ले का हैजा उसके घर में घुस कर उसके बेटे की जान ले लेगा, फैली हुई दुष्टता उसकी खुद की छाती पर चढ़कर एक दिन खून पीने के लिए तैयार हो जायगी, गाँव में लगी हुई आग कुछ घण्टों बाद अपने छप्पर में आ पहुँचेगी, असहायों का रोष एक दिन राक्षस रूप धर कर अपनी आँतों से हमारी शान्ति पीसने लगेगा । इस प्रकार 'अपने मतलब से मतलब" रखने की 'लाला शाही' नीति यथार्थ में स्वार्थ की नहीं, अनर्थ की नीति है । यह अनर्थ एक दिन उन्हें ले बैठता है । सिर्फ आटे की गोली को ही देखने वाली मछली अपनी जान से भी हाथ धो बैठती है ।

पाप, दुष्कर्म, लालच, लोभ आदि में तुरन्त ही कुछ आकर्षण और लाभ दिखाई पड़ता है, इसलिए लोग कबूतर की तरह दाने प्राप्त करने के लिए उनकी ओर दौड़ पड़ते हैं और जाल में फँस कर दुःसह दुःख सहते और रोते चिल्लाते हैं, किन्तु धैर्यवान पुरुष शुभ कर्मों में प्रवृत्त होते हैं और किसान की तरह आज कष्ट सहकर कल के लिए फसल तैयार करते हैं । वास्तव में पूरा पक्का स्वार्थी वह व्यक्ति है, जो हर काम को भविष्य के परिणाम के अनुसार तोलता है और धैर्य एवं गम्भीरता के साथ उत्तरोत्तर कर्म करता हुआ अपने लोक और परलोक को उज्ज्वल बनाता है, इसे परमार्थी कहा जाता है । अविवेकी और मूर्ख वह है जो क्षणिक सुख की मृग तृष्णा में भटकता हुआ इस लोक में निन्दा और परलोक में यातना प्राप्त करता है । यह स्वार्थ नहीं अनर्थ है । हम में से हर एक को यह बात भलीभाँति हृदयंगम कर लेनी चाहिए कि सच्चा स्वार्थ परमार्थ में है । अनर्थ का तात्पर्य तो आत्महत्या ही हो सकता है । कुत्ता सूखी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

हड्डी को चबाता है, उसकी रगड़ से अपने मसूढ़े में से जो खून निकलताा है उसको पीकर समझता है कि मुझे इस हड्डी में से रक्त प्राप्त हो रहा है । अनर्थ की नीति को अपनाने वाले अपने मुँह में से खुद खून निकाल कर पीते हैं और उसमें प्रसन्नता का अनुभव करते हैं ।

परमार्थ द्वारा आत्मोन्नति

वास्तव में जिस स्वार्थ की बुद्धिमान पुरुषों ने निन्दा की है वह ऐसा ही हीन कोटि का स्वार्थ होता है । उच्चकोटि का स्वार्थ वह है जिससे हमारे शरीर, मन और आत्मा तीनों की उन्नति होती है । ऐसे ही स्वार्थ को परमार्थ भी कहा जाता है ।

आत्मा को समुन्नत एवं सुविकसित बनाना मानव जीवन का महत्वपूर्ण उद्देश्य है । कारण यह है कि निरन्तर सताये जाने वाले विविध प्रकार के अभाव, दुःख, शोक, पाप, ताप आत्मोन्नति के बिना मिट नहीं सकते । यदि सांसारिक और मानसिक क्षेत्र में सुख शान्ति प्राप्त करनी है तो एक मात्र उपाय यही है कि आत्म–ज्ञान तथा आत्मबल की अभिवृद्धि की जाय । महान बनाने का, आनन्द के चरम लक्ष्य तक पहुँचने का और कोई मार्ग नहीं है ।

आत्मोन्नति एकांगी नहीं होती, केवल एक उपाय से ही वह पूरी नहीं हो सकती, वरन् तत्सम्बन्धी सभी उपकरण जुटाने पड़ते हैं । पहलवान बनने का इच्छुक व्यक्ति केवल मात्र व्यायाम पर ही जुटा रहे और पौष्टिक भोजन, तेल मालिश, ब्रह्मचर्य, विश्राम आदि की उपेक्षा करे तो उसका सफल होना कठिन है । यदि दीवार ही चिनते जायँ और पटाव, किबाड़, छत, फर्श आदि बनाने की ओर ध्यान न दिया जाय तो मकान बनकर तैयार नहीं हो सकता । डाक्टर बनने का इच्छुक व्यक्ति यदि दवाएँ बनाने में दिन–रात लगा रहे तो उसका सफल डाक्टर बनना असंभव है । आत्मोन्नति के सुविख्यात साधनों के सम्बन्ध में आध्यात्म विद्या के तत्वदर्शी आचार्य सदा से सावधान रहे हैं । उन्होंने अपने शिष्यों की सर्वांगीण उन्नति पर सदा से ही पूरा–पूरा ध्यान रखा है और इस सम्बन्ध में बड़े नियम, प्रतिबन्धों एवं उत्तरदायित्वों का शास्त्रों में अनेक प्रकार से वर्णन किया है । व्यवहारिक जीवन में उदारता, कृतज्ञता, प्रत्युपकार, लोक सेवा एवं स्वार्थ त्याग से ओत–प्रोत आचरणों का अधिकाधिक अवसर आना उन

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अवसरों पर अपना उत्तरदायित्व सफलतापूर्वक पूरा किया जाना प्रत्येक साधक के लिए अत्यन्त आवश्यक है । इस प्रकार के आचरणों को 'भूमि निर्माण' कहते हैं । अच्छी उपजाऊ, नरम, भली प्रकार जोती हुई जमीन में ही बीज बोने पर अच्छी फसल पैदा होती है । उपरोक्त प्रकार के आचरणों के अधिकाधिक अवसरों को बुलाना और उनके सम्बन्ध में अपना उत्तरदायित्व अधिक से अधिक तत्परता से पूरा करना यही आत्मिक–भूमिका का निर्माण है । ऐसी भूमि में ही साधना के बीज जमते हैं और जीवन मुक्ति एवं परमानन्द की कल्याणकारी फसल उपजती है ।

मनुष्य में दैवी तत्वों की अपेक्षा साधारणतः पाशविक तत्वों की ही अधिकता होती है । इसलिए वह सवयं दूसरों से अधिक लाभ उठाने और स्वयं दूसरों के लिए कुछ न करने की इच्छा रखता है । उसके अधिकांश कार्य इसी दृष्टिकोण से होते हैं । अपनी कठिनाइयाँ दूर करने और समृद्धियों को बढ़ाने में वह दैवी तत्वों की सहायता चाहता है, पर उन तत्वों के पोषण के लिए कुछ नहीं करना चाहता । इस पशुवृत्ति को गीता में भगवान कृष्ण ने बड़ी कड़ाई और शक्ति के साथ आड़े हाथों लिया है । 'पहले दो, तब मिलेगा' के सिद्धान्त का वज्र समर्थन करते हुए गीता में कहा है–

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक् ।।
देवान्भावयतानेन ते देबा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परम वाप्स्यथ ।।
इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञ भावताः ।
तैर्दत्तान प्रदायैभ्यो यो भुक्ते स्तेन एव सः ।।

–गीता ३/१०/११/१२

अर्थात्–भगवान ने मनुष्य के साथ–साथ दैवी तत्वों को भी उत्पन्न किया और घोषणा की कि इसके द्वारा तुम लोग उन्नति करोगे एवं अपनी सब मनोकामनाओं को पूर्ण करोगे । परन्तु स्मरण रखो इस दैवी तत्व की उन्नति तुम्हें भी करनी है । तभी वह तुम्हारी सहायता करेगा । प्रत्युपकार के आधार पर ही कल्याण हो सकता है । जब मनुष्य देवत्व का पोषण करेंगे तब वे बदले में इष्ट भोग प्रदान करेंगे । जो प्रत्युपकार से बचना चाहता है और दैवी साधना की याचना करता है वह पक्का चोर है ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

इससे आगे के श्लोकों में भी भगवान ने इस सम्बन्ध में और अधिक स्पष्टीकरण किया है । वे कहते हैं, जैसे यज्ञ से वर्षा, वर्षा से अन्न उत्पन्न होता है । अन्न से प्राणियों का जीवन स्थिर होता है । वैसे ही दैवी तत्व (यज्ञ) के फलस्वरूप ही आत्म–कल्याण हो सकता है । अपनी शक्तियाँ दैवत्व के पोषण में खर्च करो, बदले में जो मिले उसमें संतोष करो तो तुम सब पापों से छूट जाओगे । यदि अपने ही मतलब की फिराक में फिरोगे तो पाप खाओगे ।

भगवान के उपरोक्त अभिवचनों में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि पहल, किस ओर से होनी चाहिए । न तो मुफ्त में लेने की व्यवस्था है और न अमुक लाभ मिलने के उपरान्त अमुक बदला चुका देने की शर्त ही है । सिद्ध बाबा को चरणस्पर्श मात्र से प्रसन्न करके अष्ट सिद्धि नव निद्धि प्राप्त कर लेने की इच्छा करने वाले मुफ्तखोरों और 'बेटा हो जाय तो नारियल चढ़ाने' की शर्त बदने वाले मुनाफाखोरों को गीता ने बुरी तरह लताड़ दिया है । ऐसे लोगों को आध्यात्मिक भाषा में 'अनधिकारी' कहते हैं । अनधिकारी का तात्पर्य है–स्वार्थी, अनुदार, अविश्वासी, अश्रद्धालु । ऐसे लोगों के हाथ में यदि दैवी शक्ति चली जाय तो वे उसके द्वारा संसार में केवल अनर्थ ही उत्पन्न कर सकते हैं । इसलिए सृष्टि के आदि से ही यह सावधानी बरती जाती रही है कि अनधिकारी लोगों के हाथ में ब्रह्मशक्ति न जाने पावे ।

आत्मोन्नति की शिक्षा देने के साथ–साथ ऋषियों ने यह बराबर ध्यान रखा है कि वे अधिकारी बनते जावें, उनकी पात्रता में अभिवृद्धि होती जावे । पात्रता और साधना इन दोनों पहियों को साथ–साथ बराबर रखने में धैर्य और सावधानी से काम लेते रहे हैं । जितनी पात्रता बढ़े उतना ही साधना का स्तर ऊँचा उठता जाता है । कुपात्रों को अति ऊँचे स्तर की साधना बताकर आध्यात्मिक असंतुलन उत्पन्न कर देने का परिणाम किसी के लिए भी अच्छा नहीं हो सकता ।

प्राचीन इतिहास पर दृष्टिपात करने से ऐसा प्रतीत होता है कि आत्मज्ञान के शिक्षकों ने अपने छात्रों को परम उपयोगी अमृतमयी शिक्षा देने के साथ–साथ उनके सद्गुणों का विकास करने वाले कष्ट साध्य अवसर उत्पन्न करने में कभी भी झिझक नहीं की है । क्योंकि देवत्व का पोषण करके तब दिव्य लाभ प्राप्त करने की सनातन नीति का अवलम्बन किए परमार्थ और स्वार्थ)

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

बिना वे सफल हो नहीं सकते थे । इसलिए वे कष्ट उनके लिए आवश्यक थे । उद्दालक, धौम्य, अरुणि, उपमन्यु, कच, श्लीमुख, जरुत्कार, नचकेता, शैण, विरोचन, जावालि, सुमनस, अम्बरीष आदि अनेक शिष्यों की कथाएँ सर्वविदित हैं । उन्होंने अपने गुरुओं के आदेशानुसार बड़े–बड़े कष्ट सहे और बताये हुए कार्यों को पूरा किया । दशरथ का अपने प्राणप्रिय बच्चों का दे देना, हरिश्चन्द्र का असाधारण कष्ट सहना, मोरध्वज का अनौखा आदर्श उपस्थित करना, गुरुओं के आदेशानुसार ही हुआ था । स्थूल दृष्टि से यह कार्य उनके गुरुओं की हृदयहीनता के परिचायक कहे जा सकते हैं, पर सच्ची बात यह है कि उन कष्ट साध्य परीक्षाओं ने ही काल के चबेना, तुच्छ मानव प्राणियों को इतना महान बनाया था । इन कष्टों से वे एक अवज्ञा मात्र से ही आसानी से बच सकते थे, पर तब वे ऐश–आराम से दिन काटते हुए मर जाने वाले असंख्य कीट–पतंगों की तरह विस्मृति के अन्धकार में लुप्त हो जाते और चौरासी के चक्र में घूमते रहते । उन गुरुओं की हृदय हीनता में कितनी अपार दया भरी थी, उसका अनुमान लगाना कठिन है ।

राजा दिलीप संतान रहित थे । गुरु के आश्रम में गये कि प्रभो ! हमारा वंश डूबने से बचाया जाना चाहिए । वशिष्ठजी ने आज्ञा दी, दैवी सहायता प्राप्त करने के लिए दैवत्व का पोषण आवश्यक है । रानी सहित यहाँ आकर रहो और हमारी गौएँ चराने के लिए ग्वाले का काम करो । दिलीप जानते थे कि स्वार्थपरता की बनी हुई सूक्ष्म मानसिक ग्रन्थियाँ ही जीवन में अभाव और दुःख उत्पन्न करती हैं । उन ग्रन्थियों का शमन त्याग उदारता और परमार्थ का आचरण करने से ही हो सकता है । उन्होंने ऋषि की आज्ञा में अपना कल्याण समझा और राजपाट छोड़कर गौएँ चराने लगे, एक दिन तो सिंह से गौ बचाने के लिए उन्हें अपना प्राण तक अर्पण करने का साहस दिखाना पड़ा । ऐसे ही साहसों से वे मनोग्रन्थियाँ, संस्कार पिण्डकाएँ फूटती हैं, जो संतान न होने जैसे अभावों का मूल कारण होती हैं ।

दिलीप ने यथासमय सन्तान पाई । कोई आज का आध्यात्मिक साधक होता तो वशिष्ठ जी की चापलूसी करने में सारी चालाकी खर्च कर देता, पर त्याग के नाम पर घण्टे भर का समय या कानी कौड़ी का नुकसान

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

उठाने को भी तैयार न होता । वह सीधी उँगली घी न निकलने पर डराता, धमकाता, यजमान न रहने की धौंस बताता, निन्दा करता या फिर यह शर्त पेश करता कि मेरे बेटा हो जायगा तो उसके ब्याह में आपको कुछ न कुछ दक्षिणा अवश्य दूँगा । इस प्रकार के व्यक्ति दैवी सहायताओं द्वारा कितने लाभान्वित हो सकते हैं, इस संबंध में कुछ कहा नहीं जा सकता ।

मनुष्य में पशुता, स्वार्थपरता अधिक होने के कारण सद्गुरु इस बात के लिए प्रयत्नशील रहते हैं कि शिष्य को परमार्थ के लिए प्रेरित करने में अपने व्यक्तिगत प्रभाव का उपयोग किया जाय । जो त्याग और उदारता का छोटा-सा बोझा भी नहीं उठाना चाहता है, धीरे-धीरे करके उसे कुछ न कुछ करने को अवश्य तत्पर किया जाय । सभी जानते हैं कि अपरिग्रही ब्रह्मपरायण एवं अपनी आत्मशक्ति से संसार पर शासन करने वाले ऋषि कल्प ब्रह्मवेत्ता का भोजन उसकी झोंपड़ी पर पहुँच सकता है, पर वे इसे पसन्द नहीं करते वरन् लोगों के घरों पर जाकर भिक्षा माँगते थे, ताकि लोगों को अपनी दान वृत्ति चरितार्थ करने का अवसर मिले । गुरु दक्षिणा के नाम पर भी लोग अधिक से अधिक त्याग करते थे । निर्लोभ ऋषियों को स्वर्ण और मिट्टी बराबर था, वे प्राप्त धन को चिकित्सा, यज्ञ, विद्याध्ययन आदि लोकहित के कार्यों में ही खर्च करते थे । उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताएँ इतनी स्वल्प थीं कि उसके लिए किसी धन या दान की आवश्यकता नहीं पड़ती, दान का धन तो अमानत है, जिसे सत्पुरुष एक हाथ से लेकर दूसरे हाथ खर्च कर देते हैं । आज भिक्षा की पुण्य परम्परा अत्यन्त ही दूषित हो गई है । कुपात्र एवं हरामखाऊ लोगों ने इसे अपना व्यवसाय बना लिया है । ऐसे लोगों को दान देते समय बहुत सोच-विचार करने की आवश्यकता है, परन्तु वस्तुतः भिक्षा का मूल उद्देश्य अत्यन्त पवित्र था । जो स्वेच्छा से नहीं देना चाहता उसे कोई अवसर उपस्थित करके, देने के लिए तत्पर करना यह भी तो आत्मोन्नति की एक साधना कराने का ही प्रयत्न है ।

राम-लक्ष्मण की ही भाँति दान-पुण्य की जोड़ी है । हिन्दू धर्म में कोई भी शुभ कर्म, धार्मिक कृत्य ऐसा नहीं है, जिसके साथ-साथ परमार्थ का प्रत्यक्ष उदाहरण उपस्थित न करना पड़ता हो । ब्राह्मण भोजन, गौ, अन्न, वस्त्र, पुस्तक आदि का दान, प्रसाद वितरण आदि किसी न किसी परमार्थ और स्वार्थ)

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अंश में त्याग करना अनिवार्य माना गया है । कहा गया है कि बिना दक्षिण का यज्ञ निष्फल होता है । कारण यही है कि साधनाओं का आध्यात्मिक व्यायाम करने के साथ साधक अपनी मनोभूमि को उपजाऊ बनाने के लिए, देवत्व के पोषण के लिए, उदारता एवं परमार्थ का अभ्यास डालने के लिए कुछ क्रियात्मक कार्य भी करता चले । इस कार्य प्रणाली को अपनाने से साधना में प्रगति द्विगुणित वेग से होती है, पात्रता तेजी से बढ़ती है, फलस्वरूप आत्मकल्याण के आनन्दमय लक्ष्य को प्राप्त करना सुलभ हो जाता है । हमारी साधना उभयपक्षीय चलनी चाहिए । जप, व्रत, उपवास, ध्यान, पूजा, अर्चना, वन्दना, हम नित्य श्रद्धा और भक्तिपूर्वक करें, साथ ही अपनी उदारता, कृतज्ञता, प्रत्युपकार, त्याग, परमार्थ एवं देवत्व के पोषण की भावना को समुन्नत करने के लिए भी कुछ न कुछ अवश्य करते रहें ।

परमार्थ और सेवा–साधना

वैसे परमार्थ के अनेक रूप हैं, पर एक सामान्य मनुष्य के लिए उसका सुलभ रूप पर–सेवा ही है । कष्ट या अभावों में ग्रस्त व्यक्ति की किसी रूप में सहायता करने से उनका संकट–निवारण होने के साथ ही हमको आत्म–सन्तोष भी प्राप्त होता है । इससे आत्मिक बल की वृद्धि होती है और मनुष्य अधिक महत्वपूर्ण कार्यों के करने में समर्थ होता है ।

लोक सेवा के तीन प्रकार हैं, (१) परोक्ष सेवा, (२) प्रत्यक्ष सेवा, (३) सह सेवा । परोक्ष सेवा का तात्पर्य है अपना कार्यक्रम निर्दोष, निष्पाप, लोक हितकारी रखते हुए जीवन यापन किया जाय । प्रत्यक्ष सेवा उसको कहते हैं–जिसमें जीवन का प्रधान कार्य, सार्वजनिक कार्यों में लगे रहना होता है । सह सेवा वह है, जिसमें मनुष्य अपना बचा हुआ समय दूसरों की सहायता में लगाता है या आवश्यकता पड़ने पर अपने दैनिक कार्यों में से परहित के लिए समय निकाल देता है ।

जो व्यापारी अभक्ष, मिलावटी, नकली, खराब, कमजोर चीजें नहीं बेचता वरन् उपयोगी वस्तुएँ बेचकर जनता की अभाव पूर्ति करता है, तौल, नाप, प्रामाणिकता और भाव में ईमानदारी बरतता है, वह व्यापारी परोक्ष लोक सेवक है । यद्यपि वह अपने व्यापार को व्यक्तिगत लाभ की दृष्टि से चलाता है, पर उसमें यह ध्यान रखता है कि यह कार्य दूसरों के लिए भी उपयोगी हो । ऐसे व्यवसाय से व्यापारी अपना उतना लाभ नहीं कर पाता

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जितना कि बेईमान दुकानदार कर लेते हैं, फिर भी निश्चित रूप से उसकी ईमानदारी एक प्रकार की लोकसेवा है । इसी प्रकार कोई भी किसान, मजदूर, वकील, वैद्य, सरकारी कर्मचारी, कारीगर, अध्यापक, वैज्ञानिक, ईमानदारी से अपने कर्तव्य का पालन करता हुआ अनीति के द्वारा धन संचय का लाभ त्याग कर परोक्ष लोक सेवा के पुण्य का भागीदार हो सकता है ।

प्रत्यक्ष सेवा की वर्तमान समाज में अत्यधिक आवश्यकता है । कारण यह है कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में ऊँच–नीच, धनी–निर्धन, शासक–शासित, शिक्षित–अशिक्षित, किसान–जमींदार, सेठ–मजदूर की बड़ी भारी विषमता फैली हुई है । सरकारी ढाँचा भी ऐसा बोदा है कि वह निर्बलों, गिरे हुए लोगों एवं आपत्ति ग्रस्तों की अधिक सहायता नहीं कर सकता । ऐसी दशा में कमजोरों की हिमायत करने उनकी, तकलीफें दूर करने और ऊँचा उठाने के लिए सार्वजनिक कार्यकर्त्ता न हों तो पीड़ितों के कष्टों का ठिकाना न रहेगा । कितने ही उदार हृदय, दयालु भावना वाले, स्वार्थ त्यागी मनुष्य अपने आराम और लोभ को त्यागकर सार्वजनिक आन्दोलनों, संस्थाओं, सेवा केन्द्रों का संचालन करते हैं और गुजारे के लिए अनायास जो प्राप्त हो जाता है, उसमें जीवन यात्रा चलाते रहते हैं । इस वर्ग को लोक सेवक न कह कर लोक सैनिक कहना उपयुक्त होगा । सैनिक अपना सारा समय राष्ट्र रक्षा में लगाता है और प्राण देने तक का त्याग करने के लिए हर घड़ी तैयार रहता है । यही स्थिति लोक सैनिकों की होती है ।

तीसरे सह–सेवक हैं जो अपना कार्य ईमानदारी और समाज हित का ध्यान रखते हुए करते हैं, साथ ही सार्वजनिक कार्यों के लिए यथाशक्ति कुछ न कुछ समय निकालते रहते हैं । उपयोगी संस्थाओं के कार्य में हाथ बँटाना, सद्गुणों की वृद्धि में सहायता करना एवं सत्कार्यों में प्रोत्साहन देने के लिए प्रयत्नशील रहना सद्सेवकों को बड़ा रुचिकर होता है । अपनी जीवनचर्या चलाने के लिए वे कमाते हैं, साथ–साथ सेवा सामने आ जाय तो अपना काम हर्ज करके भी उसे पूरा करते हैं ।

परोक्ष सेवक होने की प्रत्येक नागरिक से आशा की जाती है । जो बेईमानी, बदमाशी और अनीति का आश्रय लेकर कमाता है वह कानूनी पकड़ एवं जनता की घृणा से बचा रहते हुए भी पापी एवं लोकघाती है ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

उसका वैभव कितना ही बढ़ जाय, चाटुकार उसे कितना ही घेरे रहें पर वह आत्म–हत्यारा धर्म–द्रोही होने के कारण ईश्वर के दरबार में अपराधी ठहराया जायगा । धर्म की, आत्मा की हर व्यक्ति से यह पुकार है कि वह पुण्य पथ पर अधिक अग्रसर न हो सके तो कम से कम ईमानदार नागरिक, चरित्रवान मनुष्य एवं परोक्ष लोक सेवक तो अवश्य ही बने । इस मर्यादा से नीचे गिरने वाला तो अपनी मनुष्यता के उत्तरदायित्व से भी गिर जाता है ।

लोक सैनिकों को अपने पारिवारिक भारों को कम से कम रखना चाहिए । ऐसे व्यक्ति विवाहित हों तो आगे के लिए सन्तान पैदा करना बन्द कर दें । आश्रितों के लिए कोई ऐसा आधार बन सके कि वे उसकी सहायता की अपेक्षा न रखें तो सबसे अच्छा है । आश्रितों के आर्थिक उत्तरदायित्वों से लदा हुआ मनुष्य प्रायः ईमानदारी से, पूरी दिलचस्पी और शक्ति के साथ सार्वजनिक सेवा नहीं कर पाता । प्राचीनकाल में वानप्रस्थ और संन्यास की व्यवस्था इसीलिए थी कि उस समय तक पर्याप्त मात्रा में अनुभव और ज्ञान इकट्ठा होकर शेष समय सार्वजनिक सेवा में लगाया जा सके, पर अब तो वह श्रृंखला भी टूट गई है । इसलिए गृहस्थों को ही लोक सैनिक, सार्वजनिक कार्यकर्त्ता बनना पड़ता है । ऐसी दशा में वे कामचलाऊ वेतन लें तो इसमें कुछ अनुचित बात नहीं है ।

सह–सेवकों के लिए आकस्मिक या स्वल्पकालीन सेवाओं का वेतन या मुआवजा लेना निषिद्ध है । यदि लोग ऐसी छोटी–छोटी सेवाओं का भी प्रतिफल माँगने लगे, लेने–देने का कायदा प्रचलित हो गया तो सेवा की प्रथा और पवित्रता पूर्णतया नष्ट हो जायगी ।

किसी के यहाँ मृत्यु हो जाने पर पास पड़ौस के लोग बिना कुछ मुआवजा लिए उस मृतक की अन्त्येष्टि करने के लिए श्मशान को ले जाते हैं । यदि मुआवजा लेकर मुर्दा उठाने का रिवाज चल पड़े तो आज अन्त्येष्टि में जाना जैसा धर्म कार्य माना जाता है, फिर वैसा न रहेगा । लोग मुर्दाफरोसी का पेशा करने लगेंगे । इससे तो निर्धन दुःखी जो अपने स्वजन की मृत्यु से दुःखी हैं और भी अधिक कष्ट में पड़ जायेंगे । विवाह, शादी, रंज, गमी, बीमारी, मुसीबत में लोग एक–दूसरे की सहायता बिना कुछ लिए करते हैं । पर्व, उत्सवों, मेलों पर आने वाले यात्रियों के लिए लोग सेवा समितियों द्वारा जल आदि की व्यवस्था करते हैं । बाढ़,

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अग्निकाण्ड, भूकम्प, अकाल, मेला प्रबन्ध आदि में स्वयंसेवक सेवा कार्य करके दुःखियों की सेवा करते हैं । धार्मिक कथा, कीर्तन, यज्ञ, प्रचार जुलूस आदि में लोग श्रद्धापूर्वक अपना समय देते हैं । यदि इन सब बातों के लिए वेतन, मुआवजा या मजदूरी लेने की प्रथा चल पड़े तो एक ऐसी सत्यानाशी परम्परा कायम हो जायगी जिसके कारण सेवा नाम के पवित्र तत्व के लिए मानव जीवन में कोई स्थान ही न रह जायगा ।

आत्मिक समृद्धियों में, दैवी सम्पदाओं में, सेवा सबसे बड़ी सम्पदा है । लोग भौतिक धन ऐश्वर्य को इकट्ठा करने के लिए दिन-रात चिन्ता और परिश्रम करते हैं, पर खेद की बात है कि आत्मा के साथ रहने वाली, जन्म- जन्मान्तरों तक सुख देने वाली आत्मिक सम्पत्ति, सेवा की ओर ध्यान नहीं दिया जाता । जब तक सेवा भावना का जीवन में पर्याप्त सम्मिश्रण नहीं किया जाता तब तक कोई व्यक्ति आत्मिक शक्ति नहीं पा सकता, चाहे वह कितना ही धनी या पदाधिकारी क्यों न हो ?

परमार्थ ही सच्चा वैराग्य है

हमारे यहाँ वैराग्य की बड़ी महिमा है । जब तक मनुष्य संसार और सांसारिक पदार्थों के राग-मोह में फँसा रहता है तब तक आत्मोत्कर्ष की संभावना नहीं होती । इसीलिए प्रचीनकाल के महापुरुष सम्पदा की आकांक्षा और ममता को पतनकारी बतला गये हैं, पर अनेक लोग इसका गलत आशय समझकर केवल लँगोटी लगाकर जंगल या पहाड़ में जा बैठने को वैराग्य मानने लगे हैं । इस प्रकार के अज्ञान मूलक त्याग से कोई विशेष लाभ नहीं होता । त्याग और वैराग्य का तत्व केवल पदार्थों के छोड़ देने से नहीं है, वरन् उनका सदुपयोग करके दूसरों को लाभ पहुँचाना ही उसका मुख्य उद्देश्य है ।

संसार की वस्तुओं में मालिकी के विचार रखने से उनका दुरुपयोग होता है और संसार के समस्त पदार्थों को ईश्वर की वस्तु समझकर उनका खजानची रहते हुए कार्य करने में सामग्री का उपयोग धर्म, न्याय और सुख के कार्यों में होता है । सांसारिक वस्तुओं से वैराग्य करना, उनका ठीक प्रकार उपयोग करने की कला सीखना है । लेकिन आज तो कर्तव्य-त्यागी को ही वैरागी कहने की प्रथा उठ खड़ी हुई है ।

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

वैराग्य का सारा रहस्य निष्काम कर्मयोग में छिपा हुआ है । मानव जाति के सबसे महान् दर्शन शास्त्र गीता ने निष्काम कर्मयोग पर ही सबसे अधिक बल दिया है । संसार में हमें किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें गीताकार का भावार्थ भली प्रकार समझने की चेष्टा करनी चाहिए । निष्काम कर्म और कर्मयोग यह दो शब्द हैं । निष्काम से तात्पर्य अलग रहने, न मिल जाने, निर्लिप्त रहने से है । कर्मयोग का तात्पर्य कर्तव्य धर्म पालन करने से है । जीव का धर्म यह है कि वह विकाश के निमित्त अहं भाव का प्रसार करे । अपनी आत्मीयता को दूसरों तक बढ़ावे, अपने स्वार्थों को दूसरों के स्वार्थ से जोड़ने के दायरे को बढ़ाता जाय । यह आध्यात्मिक उन्नति यदि वास्तविक हो तो वह आदमी अपनी शक्तियों का अधिक से अधिक भाग दूसरों की सेवा में लगाता है और कम से कम भाग अपने लिए रखता है । अर्थात् वह सेवा धर्म अपना लेता है और परोपकार में रत रहता है । उसका दृष्टिकोण संकुचित स्वार्थ पूरा करने का नहीं होता वरन् उदारता सहित परमार्थ को लिए हुए होता है । जो जितना ही परमार्थ चिन्तक है वह उतना ही बड़ा महात्मा कहा जायगा ?

हमारे पूर्वज ऋषि–मुनियों को ठीक तौर से पहचानने में लोग बड़ी भूल करते हैं । उनकी दृष्टि इतनी ही पहुँचती है कि ऋषि–मुनि नगरों से दूर जंगलों में रहते थे और फल–फूल खाकर तथा बल्कल वसन पहन कर जीवन यापन करते थे । आजकल के साधु नामधारी तथा कथित वैरागी अपना वैराग्य उसी की नकल का बनाते हैं । जीवन की आवश्यकताएँ तो घटाते हैं, पर बची हुई शक्ति को परमार्थ में नहीं लगाते, वरन् दम्भ, आलस्य, प्रमाद, और धूर्तता पर उतर आते हैं, इसलिए उनका जीवन साधारण गृहस्थ से भी नीचे दर्जे का बन जाता है । यही कारण है कि साधु वेशधारी भिखमंगों को गली–कूचों में हम कुत्तों की तरह दुरदुराता हुआ देखते हैं । ऋषि–मुनियों के जीवन पर गम्भीरतापूर्वक दृष्टिपात किया जाय तो उनकी सच्ची आत्मोन्नति के प्रमाण प्रत्यक्ष हो जाते हैं । जंगलों में जाकर, रूखा–सूखा खाकर, नंगे उघारे अजगरों की तरह वे नहीं पड़े रहते थे, वरन् वहाँ जाकर जनसाधारण की सेवा के लिए अधिक से अधिक काम करते थे । योगी द्रोणाचार्य ने शस्त्र विद्या में स्वयं पूर्णता प्राप्त की

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

और अनेकों अधिकारियों को उस विद्या में पारंगत बनाया । योगी चरक ने चिकित्सा शास्त्र की अन्यतम शोध की । योगी सुश्रुत ने शल्य क्रिया–सर्जरी का आविष्कार किया । पाणिनी ने व्याकरण शास्त्र निर्माण किया । आर्य भट्ट ने खगोल विद्या के मर्मों की खोज करके ज्योतिष शास्त्र बनाया । योगी वशिष्ठ ने अपने उपदेशों से राम जैसे राजकुमारों को मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम बना दिया । योगी परशुराम ने अपने प्रचण्ड बाहुबल से पृथ्वी को अत्याचारियों के रक्त से रंग दिया । योगी नारद का प्रचार कार्य इतना प्रबल था कि वे एक घड़ी से अधिक एक स्थान पर नहीं ठहरते थे और इस युग में जो कार्य अनेक अखबार और पब्लिसिटी आफीसर मिलकर नहीं कर पाते उतना काम उस समय अकेले नारद कर लेते थे । योगी विश्वामित्र ने अलग ही सृष्टि रच दी । योगी व्यास ने अष्टादश महापुराण रचे जिनमें गीता जैसे अनेक रत्न छिपे पड़े हैं । योगिराज कृष्ण ने महाभारत जैसे संग्राम को कराया । योगी चाणक्य ने अर्थशास्त्र और कूटनीति शास्त्र के अपूर्व विज्ञान की रचना की । एक भी योगी का जीवन ऐसा नहीं पाया जा सकता जिसमें लोकसेवा के महान कार्य समन्वित न हों । आत्मशक्ति की उन्नति के लिए वे योगाध्यास भी करते थे, पर वह होता इसी प्रकार था जैसे प्रातःकाल अधिक काम करने शक्ति प्राप्त करने के लिए हम निद्रा लेते हैं, या कुश्ती लड़ने का बल बढ़ाने के लिए दूध पीते हैं । रहन–सहन को कम खर्चीला वे इसलिए बनाते थे कि अपने निजी झंझटों को पूरा करने के लिए कम परिश्रम करना पड़े और अपनी अधिकांश शक्ति का उपयोग लोक सेवा अथवा परमार्थ के निमित्त हो सके । यह मानना भी गलत है कि हमारे ऋषि महात्मा स्त्री पुत्रों को त्याग देते थे । सच तो यह है कि शायद ही कोई ऋषि रहा हो जिसने अविवाहित जीवन बिताया हो अन्यथा पुराण साक्षी हैं कि सभी ऋषियों के स्त्रियाँ और सन्तानें मौजूद थीं । शंकर जैसे योगेश्वर के दो विवाह हुए और उनके बाल–बच्चे भी मौजूद थे ।

ऋषियों के जीवन पर थोड़ा–सा प्रकाश इसलिए डाला गया है कि नकलची लोग पूरी बात को समझें और तब उसका अनुकरण करें । बाल–बच्चों को भटकता छोड़ कायरता के साथ कर्तव्य धर्म की अवहेलना करते हुए घर त्याग कर भाग जाना और भगवान का भजन करने की झूँठी परमार्थ और स्वार्थ)

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

आत्म वंचना के बहाने भीख के टूक खाकर अकर्मण्यतापूर्वक जीना, न तो योग है, न संन्यास, न स्वार्थ है, न परमार्थ । यह एक प्रकार की आत्महत्या है जिसे अल्प शिक्षित या अशिक्षित व्यक्ति, स्वार्थी 'कनफूका' गुरुओं के बहकावे में आकर स्वीकार कर लेते हैं और अपने बहुमूल्य जीवन की आलस्य और प्रमाद की छुरियों से निर्दयता पूर्वक हत्या कर डालते हैं । वैसे तो आज भी थोड़े बहुत सच्चे महात्मा इन साधु वेशधारियों के बीच मिल सकते हैं जो स्वार्थ की अपेक्षा परमार्थ को महत्व देते हैं और अहंकार के नशे में ऐंठे फिरने की बजाय नम्रता और सेवा का परिचय देते हैं । ऐसे महापुरुष उसी प्रकार पूजनीय हैं जैसे कपिल–कणाद । हमारा विरोध तो उन भिखमंगों से है जो वैराग्य के पवित्र नाम को कलंकित करके प्रमाद की उपासना करते हैं और जनसाधारण के मन में यह झूँठी धारणा पैदा करते हैं कि वैरागी वही है जो घरबार छोड़कर निरुद्देश्य मारा–मारा फिरे और भजन की झूठी आत्मवंचना करता हुआ स्वार्थी जीवन बितावे ।

जीवन विकास के लिए अहंभाव का प्रसार आवश्यक है । परमार्थ में स्वार्थ को घोलते जाना, अपने लिए कम, दूसरों के लिए ज्यादा की उदार वृत्ति को अपनाते जाना ही बस एक मात्र जीव का धर्म है । धर्म के सारे अंग–उपांग इसी परिभाषा के अन्तर्गत आ जाते हैं । त्याग, सहानुभूति, प्रेम, दया, उदारता आदि सत्प्रवृत्तियाँ विकास धर्म की किरणें हैं । सम्पूर्ण धर्मशास्त्र इसी एक विन्दु के आस–पास उसी प्रकार घूम रहे हैं जैसे ध्रुव के चारों ओर अन्य नक्षत्र घूमते हैं । आप संसार से विरक्त रहिए पर प्राणियों को आत्म तुल्य समझकर उनकी अधिकाधिक सेवा के मार्ग पर बढ़ते चलिए । स्त्री के, पुत्र के, कुटुम्बियों के, शरीरों को नाशवान् समझिए, पर उनके जीव की उन्नति में भरपूर सहायता कीजिए । उनकी आवश्यक सुविधाओं का उसी प्रकार ध्यान रखिए जैसे अपनी सुविधा का रखते हैं । इस आत्म प्रसार के दायरे को क्रमशः बढ़ाते चलिए । जिन सुखों को प्राप्त करने की इच्छा अपने लिए करते हैं उन्हीं की दूसरों के लिए इच्छा करिए । सहृदय माता घर में बने हुए खीर खाण्ड के भोजन पहले अपने बालकों को कराती है, तब बचा–खुचा आप खाती है । आप जब विकाश धर्म का पालन करेंगे तो ऐसी ही उदार एवं सहृदय माता बन जावेंगे । विश्व

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

के अन्य प्राणी आपके बालक होंगे । आपका सारा वैभव अल्प बुद्धि वाले, अल्प शक्ति वाले, अल्प वैभव वाले, प्राणियों के काम आवेगा तब कहीं बचा–खुचा भौतिक सुख आप अपने लिए चाहेंगे । खीर–खाण्ड खाकर प्रसन्न हुए बच्चों का प्रफुल्ल मुख देखकर माता का हृदय आनन्द से भर जाता है, अशक्त प्राणियों की सेवा में अपना वैभव उत्सर्ग कर देने के पश्चात् आपके अन्तःकरण में भी आनन्द की लहरें उठने लगेंगी ।

नश्वर संसार का उपदेश है कि वैरागी बनिए । वैरागी का अर्थ है–संसार के पदार्थों की नश्वरता को समझते हुए उनका उपयोग विकास धर्म पूर्ति के लिए परमार्थ में करना । स्वार्थ को, लोभ को, तृष्णा को कम करके परमार्थ के विचार और कार्यों में निरन्तर लगे रहना ही सच्चा वैराग्य है ।

परमार्थ सबसे प्रेम भाव रखता है

जिस प्रकार परमार्थ का अर्थ यह नहीं है कि हम सांसारिक पदार्थों को सर्वथा त्यागकर नंग–धड़ंग घूमने लगें, इसी प्रकार परमार्थ यह भी नहीं कहता कि हम अन्य व्यक्तियों से प्रेम करना छोड़कर उदासीन वृत्ति से जीवन व्यतीत करें । इसके विपरीत परमार्थी व्यक्ति के प्रेम का दायरा तो इतना विस्तृत हो जाता है कि केवल अपने स्त्री–बच्चे, भाई–बन्धु, सखा–परिवार ही नहीं, सर्वथा अनजान और दूरवर्ती व्यक्ति भी उसमें आ जाते हैं ।

जिस वस्तु को 'प्रेम' कहा जाता है उसके अनेकानेक स्वरूप इस संसार में दृष्टिगोचर होते हैं । स्त्री प्रेम, पुत्र–प्रेम, धन–प्रेम, कीर्ति–प्रेम, व्यसन–प्रेम में व्यस्त व्यक्ति अपने को प्रेमी सिद्ध करते हैं । यह प्रेम का भौतिक स्वरूप है । भौतिक–प्रेम में तत्कालीन आकर्षण खूब होता है और उसकी प्रतिक्रिया में आनन्ददायक, अनुभूतियाँ भी परिलक्षित हैं । उपरोक्त स्त्री, धन, कीर्ति आदि के प्रेम में मनुष्य को इतना आनन्द आता है, कि इन्हें भव बन्धन–कारक और अन्त में दुःखदायक समझते हुए भी छोड़ता नहीं और सारी आयु उन्हीं के पीछे व्यतीत कर देता है ।

भौतिक प्रेम, आध्यात्मिक प्रेम की एक छाया है । उसकी छोटी–सी तस्वीर या प्रतिमा इन विषय भोगों में देखी जा सकती है । भौतिक प्रेम का अस्तित्व इसलिए है कि हम इस तस्वीर के आधार पर असली वस्तु को पहचानने और प्राप्त करने में सफल हो सकें । प्रकृति की दुकान में यह नमूने की पुड़िया बँट रही हैं और बताया जा रहा है कि देखो इस एक

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

जरा से टुकड़े में जितना मजा है, ऐसे ही मजे का अक्षय भण्डार तुम्हें पसन्द है, तो उस असली वस्तु को–आध्यात्मिक प्रेम को–प्राप्त करो । हमारे पथ–प्रदर्शक सोने का टुकड़ा दिखाते हुए बता रहे हैं कि ऐसे ही सोने की अगर तुम्हें आवश्यकता हो तो जाओ उस सामने वाली खान में से मनमानी तादाद में खोद लाओ । परन्तु हाय हम कैसे मन्द बुद्धि हैं, जो उन नमूने की पुड़ियों को चाटने में इतनी उछल–कूद कर रहे हैं और खजाने की ओर दृष्टि उठाकर भी नहीं देखते ।

प्रेम का गुण है–आनन्द । प्रेम करने पर आनन्द प्राप्त होता है । स्त्री, धन, कीर्ति आदि से प्रेम करने में आनन्द आता है या आनन्द के कारण प्रेम करते हैं । हम पत्थर, राख, कूड़ा या कौआ, चील, गीदड़ आदि से प्रेम नहीं करते, क्योंकि उनमें आनन्द का अनुभव नहीं होता या आनन्द अनुभव नहीं करते इसलिए प्रेम नहीं होता । पड़ौसी के खजाने में लाखों रुपये भरे पड़े हों, पर उनसे हमारी कोई ममता नहीं, यदि वे सब रुपये आज ही नष्ट हो जाँय, तो हमें कोई वेदना न होगी । इसी प्रकार अन्य व्यक्ति के स्त्री, पुत्र, परिजन मर जायें या किसी की कीर्ति को आघात पहुँचे तो दूसरा कौन परवाह करेगा ?

पड़ौसी का रुपया भी उसी चाँदी का बना हुआ है, जिसका कि अपना, पड़ौसी के स्त्री–पुत्रों के शरीर भी वैसे ही हैं, जैसे कि अपनों के, किन्तु अपने रुपये से प्रेम है, अपने स्त्री–पुत्रों से प्रेम है, यही वस्तुएँ पड़ौसी की भी हैं, पर उनसे प्रेम नहीं । यहाँ प्रेम का असली कारण स्पष्ट हो जाता है । जिस वस्तु पर हम आत्मीयता आरोपित करते हैं जिससे ममत्व जोड़ते हैं, वही प्रिय लगने लगती है और प्रेम के साथ ही आनन्द का उदय होता है । निश्चय ही किसी भी जड़ वस्तु में आकर्षण नहीं है, संसार की जिन भौतिक वस्तुओं को हम प्रेम करते हैं, वे न तो हमारे प्रेम को समझती हैं और न बदले में प्रेम करती हैं । रुपये को हम प्यार करते हैं, पर रुपया हमारे प्रेम और द्वेष से जरा भी प्रभावित नहीं होता । पैसा खर्च हो जाने पर हमें उस पैसे की बहुत याद आती है, पर उस पैसे को रत्ती भर भी परवाह नहीं कि जो व्यक्ति हम से इतना प्रेम करता था, वह जिन्दा है या मर गया । बात यह है कि संसार के किसी पदार्थ में जरा भी आकर्षण या आनन्द नहीं है, जिस पर आत्मा की किरणें

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

पड़ती हैं वही वस्तु चमकीली प्रतीत होने लगती है, जिस पर आत्मीयता आरोपित होती है, वही आनन्ददायक, आकर्षक एवं प्रियपात्र बन जाती है । प्रेम और आनन्द आत्मा का गुण है । बाहरी पदार्थों में तो उसकी छाया देखी जा सकती है ।

जीव को आनन्द की प्यास है, वह उसी की तलाश में संसार में इधर-उधर ओस चाटता हुआ मारा-मारा फिरता है, किन्तु तृप्ति नहीं होती । कुत्ता सूखी हड्डी को चबाता है और हड्डी द्वारा मसूड़े छिलने से रक्त निकलता है, उसे पीकर आनन्द मानता है । हम लोग भौतिक वस्तुओं के प्रेम में आनन्द का अनुभव करते हैं, इसका मूल कारण असली आत्मीय प्रेम है । यदि आत्मीयता हटा ली जाय तो वही कल की प्यारी वस्तुएँ आज घृणित या अप्रिय प्रतीत होने लगेंगी । स्त्री का दुराचार प्रकट होने पर वह प्राणप्रिय नहीं रहती, वरन् शत्रु-सी दृष्टिगोचर होने लगती है । पिता-पुत्र में, भाई-भाई में, जब कलह होता है और आत्मीयता नहीं रहती तो कई बार एक-दूसरे की जान के ग्राहक होते हुए देखे गये हैं । मकान, जायदाद, गाड़ी, सवारी जब अपने हाथ से बिक कर दूसरे मालिक के हाथ में पहुँच जाते हैं तो उनकी रक्षा व्यवस्था की परवाह नहीं रहती, क्योंकि अब उनमें से आत्मीयता छुड़ाली गई । सुस्वाद भोजन, नाच रंग, विषय-भोगों का आनन्द भी अपने भीतर ही है । यदि पेट में अजीर्ण हो, तो मधुर भोजन कड़ुआ प्रतीत होता है । गुप्त रोगों की व्यथा हो, तो स्त्री-भोग पीड़ा कारक बन जायगा, नेत्र दुःख रहे हों तो किसी नाच-रंग में रुचि न होगी । इन्द्रिय भोग जो इतने मधुर प्रतीत होते हैं, वे वास्तव में उनके अन्तर्गत प्रकाशित होने वाली अखण्ड ज्योति के ही स्फुल्लिंग हैं अन्यथा बेचारी इन्द्रियाँ क्या आनन्ददायक हो सकती हैं ।

निश्चय ही प्रेम और आनन्द का उद्गम आत्मा के अन्दर है । उसे परमात्मा के साथ जोड़ने से ही अपरिमित और स्थाई आनन्द प्राप्त हो सकता है । सांसारिक नाशवान् वस्तुओं के कन्धे पर यदि आत्मीयता का बोझ रखा जाय, तो उन नाशवान वस्तुओं में परिवर्तन होने पर या नाश होने पर सहारा टूट जाता है और उसके कंधे पर जो बोझ रखा था, वह सहसा नीचे गिर पड़ता है, फलस्वरूप बड़ी चोट लगती है और हम बहुत समय तक तिलमिलाते रहते हैं । धन नाश पर, प्रियजन की मृत्यु पर,

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

अपेक्षा होने पर कितने ही व्यक्ति धाड़ मारकर रोते–बिलबिलाते और जीवन को नष्ट करते हुए देखे जाते हैं । बालू पर महल बनाकर उसे अजर–अमर रहने का स्वप्न देखने वालों की जो दुर्दशा होती है, वही इन हाहाकार करते हुए प्रेमियों की होती है । भौतिक पदार्थ नशावान हैं, इसलिए उनसे प्रेम जोड़ना एक बड़ा अधूरा और लँगड़ा–लूला सहारा है, जो कभी भी टूट कर गिर सकता है और गिरने पर प्रेमी को हृदयविदारक आघात पहुँचा सकता है । प्रेम का गुण तो आनन्दमय है, जो दुःखदायी परिणाम उपस्थित करे वह प्रेम कैसा ? इसीलिए तो आध्यात्म तत्व के आचार्यों ने भौतिक प्रेम को 'मोह' आदि घृणास्पद नामों से संबोधित किया है ।

प्रेम का आध्यात्मिक स्वरूप है कि आत्मा का आधार परमात्मा को बताया जाय । चैतन्य और अजर–अमर आत्मा का अवलम्बन सच्चिदानन्द परमात्मा ही हो सकता है । इसलिए जड़ पदार्थों से, भौतिक माया वंचित वस्तुओं से, चित्त हटाकर परमात्मा में लगाया जाय । आत्मा के प्रेम का परमात्मा उत्तर देता है और आपस में इन दोनों प्रवाहों के मिलने पर एक ऐसे आनन्द का उद्भव होता है, जिसका वर्णन नहीं हो सकता ।

आत्मा का विशुद्ध रूप ही परमात्मा है । मानव की उच्चतम परमसात्विक, परम एश्वर्य आनन्दमयी अवस्था ही ब्राह्मी स्थिति है । ब्रह्म और ब्राह्मी स्थिति एक ही बात है । इसी परमतत्व की–इसी केन्द्र की चर्चा, कीर्तन, जप, स्तुति, अनुनय, विनय, पूजा, अर्चा करना भक्ति का वास्तविक उद्देश्य है । ईश्वर से प्रेम करना चाहिए, ब्रह्मानन्द में मग्न रहना चाहिए, आत्मा के विशुद्ध स्वरूप परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए, इसका सीधे शब्दों में तात्पर्य यह है कि परम सात्विक निर्दोष, शुद्ध अवस्था में पहुँचने के लिए हर घड़ी व्याकुल रहना चाहिए, एक क्षण के लिए भी उस आकांक्षा को भुलाना न चाहिए । हमें सच्ची भक्ति की, सच्चे प्रेम की उपासना करनी चाहिए । आत्मा से, परमात्मा से प्रेम करना चाहिए । अपने को मनुष्यता की आदर्श प्रतिमा बनाने के लिए निरन्तर विचार और कार्य करना चाहिए । यही स्वार्थ और यही परमार्थ है । प्रेम का सच्चा आध्यात्मिक स्वरूप भी यही है ।

आत्मा प्रेम का केन्द्र है । विश्व व्यापी आत्मा, परमात्मा समस्त प्राणी समाज हमारे प्रेम का केन्द्र होना चाहिए । घट–घट वासी

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

परमात्मा से हम प्रेम करें । प्रत्येक प्राणी की आत्मा को ऊँचा उठाने, विकसित करने और सुखी बनाने में हम अधिक से अधिक ईमानदारी, मेहनत और दिलचस्पी के साथ काम करें, यही परमात्मा के साथ प्रेम करने और मुक्ति दिलाने वाले परमार्थ का सच्चा तरीका है ।

स्वार्थ–त्याग में अनन्त आनन्द

संसार में सबसे बड़ी चीज आनन्द माना गया है । दुनियाँ में सब जगह जितनी भाग–दौड़ दिखलाई पड़ती है और जितने भी प्रयत्न किए जाते हैं उन सबका अन्तिम उद्देश्य आनन्द की प्राप्ति ही होता है, पर अधिकांश लोग यह नहीं समझते कि आनन्द भौतिक पदार्थों से कदापि नहीं मिल सकता । वह तो आत्मा का गुण है और इसलिए उसकी प्राप्ति आध्यात्मिक प्रयत्नों द्वारा ही संभव है ।

यदि मनुष्य वास्तव में आत्मिक सुख को खरीदना चाहे तो उसे इसके बदले में उसी के समकक्ष चीज देनी होगी । यदि वास्तव में हम संयम, सहिष्णुता, धैर्य, सहानुभूति और प्रेम को अपने हृदय में उत्पन्न करना चाहें तो हमें इनके बदले में अपनी मनोवृत्तियों की उच्छृंखलता, स्वार्थ, लम्पटता और मानसिक चपलता से विदा लेनी होगी । लोभी मनुष्य का द्रव्य से चाहे कितना ही प्रेम क्यों न हो, यदि वह अपने शारीरिक आराम को चाहता है, तो उसे अपना द्रव्य अवश्य खर्च करना पड़ेगा । इसी भाँति स्वार्थ का त्याग करने में हमें कितना ही कष्ट क्यों न हो, बिना उससे छुटकारा पाये हम आत्मिक उन्नति प्राप्त नहीं कर सकते । धन का सच्चा उपयोग यही है कि उसके द्वारा मनुष्य जाति को अपनी सुख–सुविधा जुटाने में सुविधा हो । वह कृपण, जो लक्ष–लक्ष मुद्राओं के रहते भी द्रव्य–प्रेम के कारण आवश्यक सामग्रियों को नहीं जुटाता, निस्संदेह दया का पात्र है । इसी भाँति चैतन्य जगत में जो व्यक्ति अपनी मानसिक वृत्तियों के बदले में सच्चे सुख और शान्ति को प्राप्त करने में हिचकिचाता है वह मूढ़ बुद्धि है । प्रकृति ने मनुष्य के हृदय में क्रोध की सृष्टि इसीलिए की है कि उस पर विजय प्राप्त करके क्षमा कर दी जाय । स्वार्थ के वशीभूत होकर मनुष्य दूसरों की सुख–सामग्री को छीन–छीन कर अपने सुख के लिए एकत्र करता है । दूसरों की उसे जरा भी चिन्ता नहीं रहती । अतएव वह

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

कृपण मनुष्य के सदृश्य अपना द्रव्य अपने ही पास रखना चाहता है, परन्तु धर्म का सिद्धान्त इसके विपरीत है । धर्म चाहता है कि मनुष्य अपने सुख का उपभोग स्वतः भी करे और दूसरे मनुष्यों को सुख देने के लिए भी तत्पर रहे ।

वे आत्मिक शक्तियाँ कौन–कौन हैं–जिनकी वृद्धि के लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए । दयालुता, मैत्रीभाव, समवेदना, संयम, धैर्य, सत्य, शान्ति और विश्वव्यापी प्रेम । ये सारे भाव जिस समय मनुष्य के हृदय में पूर्ण रूप से विकसित हो जाते हैं उसी समय उसकी आत्मा विस्तीर्ण होते–होते सारे विश्व में फैल जाती है । यदि इन भावों की प्राप्ति करना चाहते हो तो अधीरता, कोध, निर्दयता, घृणा और स्वार्थ तथा अपनी वृत्तियों को दमन करने का प्रण कर लो । ज्यों–ज्यों इनकी मात्रा हृदय से घटती जायगी, त्यों–त्यों ही सुख और शान्ति की मात्रा बढ़ती चलेगी ।

परमार्थ का मार्ग और उसके सहायक

परमार्थ का मार्ग परोपकार, दीन और निर्बलों की सेवा तथा आध्यात्मिक विषयों की उन्नति में है । इनकी वृद्धि के लिए हमको सत्संग, आत्म–निरीक्षण, नियम पालन और दृढ़ विश्वास की प्रवृत्तियों को बढ़ावा देना चाहिए ।

सत्संग मानसिक उन्नति का सर्वप्रथम साधन है । सत्संग से ही मनुष्य को भले और बुरे, लाभदायक और हानिकारक, उत्कृष्ट और निकृष्ट की पहिचान होती है । इसलिए सत्संग का नियम कभी भंग नहीं करना चाहिए । अमर विद्वान और त्यागी पुरुषों का समागम नित्यप्रति न हो सके तो ऐसे महापुरुष के विचारों को उनके रचे हुए ग्रंथों में अवलोकन करना चाहिए । जहाँ तक संभव हो इसका एक विशेष समय निर्धारित कर लेना चाहिए और उस समय विशेष रूप से पवित्र होकर किसी उपदेश पूर्ण धर्म–ग्रन्थ का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना चाहिए । इस प्रकार स्वाध्याय करने से मन पर दृढ़ प्रभाव पड़ता है ।

आत्म–निरीक्षण के लिए अन्य लोगों के गुणों पर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है । सत्संग और स्वाध्याय से हमको अपनी त्रुटियों का पता लग जाता है । हम जान सकते हैं कि हम में कैसे और कितने दोष भरे पड़े हैं । दूसरों के गुणों को देखकर हम भी उनका अनुकरण कर

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

सकते हैं । हमको इस बात पर भी विचार करते रहना चाहिए कि हमारे दोषों के कारण किसी की हानि तो नहीं हो रही है, किसी के हृदय को आघात तो नहीं लग रहा है । इस प्रकार की भावना से हमारा कल्याण होने के साथ–साथ अन्य लोगों का भी हित होगा और हम परमार्थ के मार्ग पर अग्रसर हो सकेंगे । गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं–

खल अघ अगुन साधु गुनगाह्य । उभय अपार उदधि अवगाह्य ।।
तेहि ते गुण और दोष बखाने । संगह त्याग न बिनु पहिचाने ।।

मनुष्य का कर्तव्य है कि सत्संग करके गुण और दोषों की पहचान करे और समझ–बूझकर गुणों को ग्रहण करे तथा अवगुणों को दूर फेंक दे । प्राचीन और नवीन सभी युगों के महान पुरुष इसी नीति से विश्ववंद्य पदवी को प्राप्त कर सके थे । जिन पाठकों ने महात्मा गांधी की आत्म कथा पढ़ी है, वे जानते हैं कि महात्मा जी अपने आरम्भिक जीवन से ही दोषों और पापों के प्रति कितने सतर्क और जागरूक रहते थे और कैसे प्रयत्न से उन्होंने अपनी त्रुटियों को दूर किया था । इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास जी की रचनाओं से प्रकट होता है कि अहंकार और मोह से बचने के लिए वे सदैव आत्म निरीक्षण किया करते थे और अपने दोषों की बड़ी तीव्रता के साथ आलोचना करते थे ।

अपने नियम पर दृढ़ रहना प्रत्येक कार्य की पूर्णता के लिए परमा वश्यक है । इससे शरीर और मन नियन्त्रण में रहते हैं और सहनशक्ति की वृद्धि होती है । मनुष्य का मन बड़ा चंचल है । सत्संग और आत्म निरीक्षण के प्रभाव से उतने समय के लिए संयत हो जाने पर भी वह सदैव सुमार्ग पर चलेगा इसकी कोई गारण्टी नहीं, जैसे ही अनुकूल वातावरण मिल जाता है कि वह उछलकूद मचाने लगता है । इसीलिए उस पर नियम पालन का प्रतिबन्ध रखना आवश्यक है । जब कभी परिस्थितिवश कोई नियम भंग हो जाय तो उसके बदले में कुछ प्रायश्चित कर लेना भी जरूरी है । इस तरह निरन्तर अभ्यास से मन वश में होकर परमार्थ–पथ पर आरूढ़ रह सकता है । जो लोग थोड़ा–सा साधन करते ही अपने को पूर्ण समझ लेते हैं वे कभी सफल नहीं हो सकते । गीता में कहा गया है–

अज्ञश्चाश्रद्धानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो सुखं संशयात्मनः ।।

"जो लोग निश्चल, दृढ़, भावना से साधन करते हैं वे ही सफल

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org

मनोरथ हो सकते हैं । जिनका मन संशय में पड़ा रहता है वे कभी पार नहीं पहुँच सकते, बीच में ही बह जाते हैं ।"

परमार्थ के उद्देश्य में पूर्ण विश्वास ही साधक को आगे बढ़ाता है । विश्वास में कमी रहने से भी सफलता प्राप्त होना असम्भव होता है । विश्वास की दृढ़ता से मन और आत्मा का बल बढ़ता है और मनुष्य विघ्न बाधाओं का मुकाबला करता हुआ आगे बढ़ता जाता है । वह संकटों से कभी भयभीत नहीं होता और जब तक लक्ष्य हो प्राप्त न कर ले अपनी गति को कभी मन्द नहीं पड़ने देता ।

परमार्थ और स्वार्थ की एकता

सम्भव है अब तक के विवेचन से अनेक पाठक इस उलझन में पड़ गये होंगे कि वे किसको स्वार्थ समझें और किसको परमार्थ ? यदि मनुष्य में स्वार्थ की भावना प्राकृतिक और स्वाभाविक है तो क्या 'परमार्थ' का शब्द कोरी कल्पना है ? हम पहले ही बता चुके हैं कि मनुष्य प्रधानतः स्वार्थी ही है और ऐसा होना आवश्यक भी है । यदि मनुष्य में स्वार्थ आत्म–रक्षा और आत्म–विकास की भावना न हो तो उसका आस्तित्व रह सकना कठिन है । परन्तु साथ ही यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि उच्च सभ्यता और संस्कृति की गोद में पले मनुष्य में परमार्थ और परार्थ की भावना भी न्यूनाधिक अंशों में अवश्य पाई जाती है । पुत्र–प्रेम, पति–प्रेम, देश–प्रेम शब्द केवल कल्पना मात्र नहीं है । किसी अनजान दीन व्यक्ति के कष्ट देखकर अनेक मनुष्य द्रवीभूत हो जाते हैं, तो वह कोई दिखावटी बात नहीं होती, हम निःस्वार्थ उसकी सेवा करते हैं ।

हमारे देश के हजारों व्यक्ति परोपकार के लिए सर्वस्व त्याग कर चुके हैं । गरीबों और अनाथों की सेवा के लिए अनेक लोग अति प्राचीन कथाओं को छोड़ भी दें तो अब भी ऐसे व्यक्ति हुए हैं, जिन्होंने करोड़ों की सम्पत्ति अपनी खुशी से देशाद्धार के लिए अर्पण कर दी । हम यही बताना चाहते हैं कि ऐसा स्वार्थ जो अपनी प्रत्यक्ष हानि करके दूसरों के लाभार्थ किया जाय परमार्थ कहलाता है । ऐसा स्वार्थ जिससे बहुसंख्यक लोगों का हित साधन होता है, दूसरों को भी श्रेष्ठ कार्य करने का प्रोत्साहन मिलता है और स्वयं करने वाले को आत्मोन्नति का लाभ मिलता है, वास्तव में परमार्थ है ।

मुद्रक–युग निर्माण प्रेस, मथुरा

Free Read/Download & Order 3000+ books authored by Yugrishi Pt. Shriram Sharma Acharya(Founder of All World Gayatri Pariwar) on all aspects of life in Hindi, Gujarati, English, Marathi & other languages at
www.vicharkrantibooks.org http://literature.awgp.org